शिव०—जो हमने कहा, स्मरण रखना।

ना०—भला मरण पर्यन्त कभी भूल सकता हूं?

[प्रणाम और प्रस्थान।

(पटाक्षेप)

(दूसरा गर्भाङ्क)

स्थान कैलास पुरी

(जया, बिजया, के सहायता से सती रुद्राक्ष माला गूंथती हैं)

जया०—बिजया! तू भूल गई, पांच २ छोटी मनिया पर एक २ बड़ी मनियां होना चाहिये! तूने तो एक बारगी बारह मनिआ गूंथ दी थी।

बिज०—क्यों मैं भूली कैसे? बारह २ का नव गुणा तो कर, १०८ होता है कि नहीं? (सती से) न माता?

सती०—नहीं बेटी, यह नहीं, जया जो कहती है वही ठीक है! उस दिन कल्पना देबी के मुंह से नहीं सुना, पहिले उनके पांच मुंह और दस हाथ थे! इसी कारण से पंचानन नाम हुआ, दहिने पांचो हाथ में माला ले कर जप करते थे तभी से पांच २ करके बनाया जाता है।

जया०—(करताली बजा कर) ओह फिर भूलती है—छः दाना गूथ दिया।

सती०—बिजया तू माला रख दे बेटी, हम लोग गांथ लेते हैं तुम जाओ भस्म की ढेली तोड़ कर अच्छी तरह पीस डालो और रोरी और बिभूति एकत्र रखदो!

जया०—और सिद्धी इत्यादि धोकर के उसी सुफेद कुण्डी में भिगो कर रखना, हम लोग माला गूंध कर बिल्वपत्र चुनें। [नेपथ्य में—हे मात जगदम्बे]

(बीणा के सङ्ग गीत)

(रागिनी गौड़ सारंग वा भैरवी ताल धीमा तिताला।)

त्रिभुवन जननी की बलि जैहों।
हर मनोरमा भीमा के पद पंकज सीस नवैहों ॥ १ ॥
सती मातु कैलास चन्द्रमा, करि दरशन सुख पैहों ॥२॥
बिधि कुल नन्दनि बिरँचि बन्दनी, त्याजि और कहँ जैहों ॥
सुशीला सरला बाला कहं, भजि भौ ताप नसैहों ॥
हे गौरी शंकरी भवानी, तव चरनन लपटैहों ॥ ५ ॥

बिजया०—माता! नारद ऋषि आते हैं! कहो तो एक क्षण उनकी बात चीत सुन कर तब जाँय!

सती०—(मधुर स्वर से) अच्छा! बैठो!

(नारद और शांतिराम का प्रवेश और प्रणाम)

नारद०—आहा हा! कैलास में आकर चरणारबिन्द के

दर्शन बिना यदि चला जाता तो किस के शरण में बैठता ! तड़फड़ा कर मैं मर जाता।

सती०—क्यों आने को मना किसने किया ?

नारद०—पितृव्य महाशय और कौन !।

सती०—क्यों ?

नारद०—उसमें बड़ी बड़ी भारी भारी अनेक बातें हैं, इस समय खाने को क्या है ? कुछ हो तो दो !

सती०—नहीं कहोगे पुत्र तो नहीं पाओगे ।

नारद०—माता, तुम्हारे मुख से क्या ऐसी बात शोभा देती है ? स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, सब स्थान घूमे, किन्तु ऐसी माता कहीं नहीं देखी ! दैत्य दानव की माता भी जब उनके बालक कुछ खाने को मागते हैं तो उनके आगे भोजन रख के तब जो कहना सुना होता है कहती सुनती हैं ।

सती०—(बिजया से भोजन के लिये इंगित करके सहास्य) नारद ! यह कौन है ? (शांतिराम को देख कर)।

[बिजया का प्रस्थान ।

नारद०—यह तुम्हारे सन्तान का सन्तान है ।

जया०—तुमारा सन्तान ! यह देखो कुवार के सन्तान !

नारद०—सुन जया ! तू क्या बूझेगी ? माता बूझती हैं, मैं बूझता हूं, और शांतिराम बूझता है ! क्यों शांतिराम कुछ बोलते क्यों नहीं ?

(बिजया का प्रवेश)

विज०—(नारद को फल दे कर के) यही लाई हूं जितना हो सके खाओ!

शांति०—(अपने मुंह में अंगुली दे कर)

अजौं न तजे टेढ़ाई रसना। गुरु अज्ञा पालत तू कस ना॥
सुखहायक्यौंनाचतनाहीं। मनकीबातरखतमनमाहीं॥
जोजियमाहिंकहतकसनाहीं। अबकाबकहबकहांकिछिपाहीं॥
जासुमिलनकीरहीनआसा। मिल्योआजआपुहिअन्यासा॥
शांतिराम के भाव की पूंजी। ता सँदूक की तू है कूंजी।
अबकिनखोलिकरतनिजकाजू। बचनरतनबिनुहोयअकाजू॥
जौ तू हठ करिकै यह बोले। जाका धन है साई खोले॥
तब हम मानि लेब यह बाती। वह जानै जाकी है थाती॥

सती०—(सहास्य) शांतिराम! आज से कैलास धाम तुमारे विश्राम का स्थान हुआ!

शांति०—(कांख बजा कर नृत्य पूर्व्वक)

अहो भाग्य क्या अहै कपालू। अधिक पिता से मातु दयालू॥
पितु सन जांचत मैं जो पाता। सो दोनी बिनु मांगे माता॥
शांतिराम अब सोच कहा है। कनकभवन जब पाय रहा है॥
शांतिरामगांजाबनिजावै। अमर्ताहिसम न बड़प्पनपावै॥
शांतिरामअबकरिलैराजू। कृषीबिनासोहिंमिल्योअनाजू॥
अब क्यों करै दूसरी आसा। फल सुतरु जहँ बारहमासा॥

कछुनहिंदूभ्रतशांतिअयाना। मातुचरणघटसुधासमाना॥
सानंदहोयकरैकिनपाना। जमपुरकोफिरहोयनजाना॥
तिल्लाधीनाधिल्ला ताना। मिटिगो तेरो आना जाना॥
नार०—तो क्या शांतिराम अब हमारे साथ नहीं चलोगे?
हमारी ढेकी की मोह माया भूल गये?
शांति०- तन मन सों सेवा करौं जाकी जम को मारि।
तेहि ढेकी प्रियप्राण का कैसे सकौं बिसारि॥
दिवस माहिं ढेकी चलै तब कस सेवा होय।
जब त्रिभुवन फिरि आइहौं थकि कै रहिहौं सोय॥
तब ढेकी कहँ बाँधि कै सेवा करब अनेक।
वृषभहु पालब यत्न करि यही हमारी टेक॥
इन दोउन को बाँधि कै गांजा पिअब अघाय।
जम कहँ मारब लात है जौं गांजा बरि जाय॥
जब माता निज पितु भवन यज्ञ देखने जांहि।
तब नन्दी संग जाइबे हमहू मानब नांहि॥
(नृत्य पूर्व्वक)
तिल्लाधीनाधिल्ला ताना। मिटि गो तेरो आना जाना॥
सती०—शांतिराम "यज्ञ देखना" क्या कहता है?
नार०—(स्वगत) उत्तम (प्रगट) पागलों की बातें निरर्थ हुआ करती हैं, क्या जितना बोलते हैं सब का अर्थ होता है? जो मुंह में आ गया वही कह दिया!

सती०—नहीं नारद ! जो अर्थ न होता तो तुम उस के छिपाने में इतना व्यस्त न होते ! हमारी दहिनी बाँह फड़कती है ! हम अवश्य सुनेंगे !

नार०—क्या सुनोगी ?

सती०—"यज्ञ देखना" क्या कहा ?

नार०—तुमारे पिता के घर यदि किसी उत्सव समय में, कदापि कोई यज्ञ इत्यादि होगा, तो वृषभ के रथ पर नन्दी के संग तुम जा सकती हो, शांतिराम का यही भाव है ! (शांतिराम से) क्यों शांतिराम यही न ?

शांति०—उत्सव समै की कैसी बात ।
यज्ञ तो होगा कालहि प्रभात ॥
शांत पागला साजो साजू ।
माता के संग चलिहौं आजू ॥

(नाचता हुआ जाता है)

सती०—क्यों नारद ! हम यज्ञ से वंचित हैं ?

नार०—(सहास्य) इस वंचना से हम वंचित न हो जावें ?

सती०—यदि यही भय होता तो इतना अनर्थ क्यों होता ?

नार०—यदि यही न होता तो इतनी दूर हम आते क्यों, और शांतिराम का वाक्ययंत्र क्यों बजता ?

सती०—नारद ! सत्य कहो—क्यों ऐसा हुआ ? हमारा प्राण व्याकुल हो रहा है ! पिता कल यज्ञ करेंगे,

परन्तु कैलास में तो कोई आया ही नहीं, जामाता को भी नहीं बुलाया, हम को लेवाय नहीं गये, तुम आये भी तो, वह बात नहीं कहा, दैव संयोग से जो अभिप्राय भी मैंने जाना, तौ भी स्पष्ट नहीं कहते। हाय! नारद! इस एक क्षण में कितनी बातें एकत्रित हो कर हमारे प्राण को व्याकुल कर रहीं हैं, जान नहीं पड़ता कि क्यों हमारी ऐसी दशा हो गई? जाग यज्ञ तो दूर रहै, कौन बात कैसी है, यह भी मैं नहीं समझ सकती! हमारी सपथ करो! स्पष्ट कहो कि क्या होता है?

नार०—हां माता! विद्यावती, गुणवती, अचचला, स्व-शीला, गुणशीला, जो कोई हों, परन्तु अबला हो कर लघु बुद्धि नहीं जाती। और इस की साक्षी तो तुम्ही हो, जो सब गुण से त्रिभुवन में अनुपमा हो, तुम भी व्यर्थ दुखदाई आशंका में विमुग्ध(१) हो गई हो! मैं सपथ कर के कहता हूं, कि तुमारी माता, पिता, भगनीगण, सब कुल परिवार सहित, कुशला-नन्द हैं, किसी बात से कोई क्लेशित नहीं है!

सती०—नारद! व्यर्थ बात के आडम्बर में हम को क्यों

(१) अज्ञानी।

भुलवाते हो ? यह जो कहा कि "वह लोग सकुशल हैं" सो तो अच्छा ही है, परन्तु उसी के साथ यज्ञ को कोई बात भी न कही, यह क्यों ?

नार०—यज्ञ की बात जिसके मुंह से सुना, उसी के मुंह से सुनो ! हम को उस अग्नि पर हाथ देने का क्या प्रयोजन है ?

सती०—अग्नि कैसी नारद ?

ना०—क्रोधाग्नि ! नहीं तो और किसी अग्नि का नारद क्या भय करते हैं ?

सती०—किसकी ?

ना०—जिसके क्रोधाग्नि से एक बार हमारे पिता का सिर भस्म होगया, मैं किस गिनती में हूं !

सती०—नारद ! हमारे पिता के घर यज्ञ है—उत्सव की बात, अहलाद की बार्त्ता; वह बात हम से कहने से उनको क्यों क्रोध होगा ?

ना०—तभी तो माता, जो नहीं कहने को सोई तो कहना पड़ता है (धीमे स्वर से स्वगत) हमको दोनों प्रकार से संकट है ! दो क्यों, तीन संकट, ! वरन चार संकट ! प्रथम भाई ने कहा कि कैलास में मत जाना ! दूसरे—प्रसूती ने कहा कि कैलास में अवश्य ही जाना ! तिस पर यदि मैं आया भी, तो पिता

ने कहा कि तुमारी माता यह बात न सुनें,—उनसे साक्षात (१) मत करना ! यही तो विघ्नसंकट है ! यदि वहीं से तुर्त चला जाता, तो कोई उत्पात नहीं होता ! "कैसा सीधा मन—फिर इस अवस्था में सिधाई न हो तो हो क्या ? दो डग भी नहीं चला, कि भोलानाथ का अनुरोध (२) में भूल गया; माता को देखने के लिये चला आया ! और आया भी तो क्या—आने में भी कोई हानि नहीं थी, किन्तु आते ही यदि शान्तिराम यज्ञ की बात न कहता, तो और कोई उत्पात न होता ! अब क्या करें ? ऐसा कुवंश पीछे लगा---इसी से तो अब हम अशक्त होगए. चारो शंकट, के चारो चरण पूरे हो गए,—अब पार नहीं हो सकते—हरि इच्छा !

सती०—बेटा, अब एक बात बतलाने ही से तुमारी छुट्टी होगी ।

भा०—सो कौन बात है माता ?

सती०—नारद ! क्या कहैं पुत्र ! बात तो मुंह से आती ही नहीं; बेटा, मैं बड़ी दुःखिनी, मैं भिखारिनी की भिखारिनी हूं ! परन्तु माता पिता हैं ! त्रिलोक में माता

(१) भेंट । (२) उपकार ।

पिता की भांति सन्तान के दुःख से दूसरा कौन दुःखी हो सकता है ? हमारे तो कोई दूसरा है भी नहीं ।

नारद—क्यों माता, तुम्हारे बहिन भी तो है ? लोगों को एक बहिन के रहने से कितना सुख होता है, तुम्हारे तो २७ हैं !

सती—यह तो सत्य है नारद, हमारी सौभाग्यवती २७ सहोदरा हैं—उनमें मै सब से छोटी हूं, मैं सब की प्राणतुल्य स्नेहपात्री हूं—यह बात तो ठीक है। किन्तु हाय ! यह मेरे भाग्य का दोष है। कि मुझको भिखारिनी समझ कर वे सब भी मेरे ऊपर कृपादृष्टि नहीं करतीं—एक बार आंख उठा कर नहीं देखतीं नहीं, नहीं, मैं भूलती हूं—नेत्र उठाकर देखने में उनका सिर नीचा हो जावेगा, क्योंकि वह लोग उच्च स्थान चन्द्रलोक की रहनेवाली ठहरीं, और मैं पर्वतबासिनी—नितांत कंगालिनी हूं—उसी से कहती हूं नारद ! कि मैं केवल माता पिता का मुंह देख कर सब दुःख सहती आई ! मैं जानती थी कि माता पिता के जितनी पुत्री हैं सब से मैं छोटी और प्यारी हूं, इस कारण पिता मेरे ऊपर विशेष स्नेह रक्खेंगे ! अरे नारद ! आज छाती फटी जाती है उसी पिता ने किस दोष से तुम्हें कैलास में आने से निषेध किया ?

नारद—हे माता ! अब चाहे जो हो, जब तुमने सुनही लिया तो फिर कहने में दोष क्या है ? भृगु के यज्ञ में एक बड़ी भारी सभा हुई, उस सभा में पिता, पितृव्य इत्यादि त्रिलोक के मनुष्य उपस्थित थे ! जिस समय दक्ष प्रजापति सभा में गये प्राय: सभी लोगों ने उठ कर उनका आदर सत्कार किया, उसीयज्ञ में कैला-सनाथ नहीं उठे, इसी कारण उन्होंने क्रोध करके एक महायज्ञ का अनुष्ठान किया है; उस यज्ञ का नाम "दक्षयज्ञ" अथवा "शिवहीन यज्ञ" है ! अभि-मान उसका मूल, दर्प उसकी शाखा, ममता उसका पत्र, शिव अपमान उसका फल है परंतु उसका फल क्या होगा सो तो माता मैं नहीं जानता ! शिव-हीन यज्ञ का शिव (मंगल) हीन फल है, और क्या हो सकता है ? बस यही तो सब है, सुना न माता अब जो तुम्हें भला जान पड़े सो करो !

सती—(सरोदन) हा पिता ! जो दाक्षायणी तुमारी बड़े आदर की पुत्री थी उसी को जलांजली दी !—एक बारही जलांजली !—बिना दोष जलांजली !—अप-मान सहित जलांजली ! अरे नारद ! तो फिर इस प्राण रखने का क्या फल ? और कोई होता तो होता, पिता माता जिससे बिमुख हों, उसके जीने

में क्या सुख है ? हा माता ! जिसको तुम आंख से कभी दूर न करतीं, और न अङ्क से कभी उतारती थीं, क्या मैं तुमारी वही पुत्री नहीं हूं ? हे पृथ्वी ! फटो ! मैं तुम में प्रवेश करूं, यह मुँह फिर जगत में न दिखाऊंगी ! हा बले ! जया, बिजया, अग्नि जलाओ ! अब इस देह को मै न रक्खूंगी, तापित प्राण को शीतल करूंगी !

नारद—माता, धैर्य धरो! बात सुनो; इसमे प्रसूती देवी का कुछ भी दोष नहीं है; उन्हों ने हमको सपथ देकर पठाया है, वह तुम्हारे बिना प्राण नहीं रक्खेगीं ! तुम स्वच्छन्द माता के पास जाओ, पिता का व्योहार मत देखो ।

सती०—अरे नारद ! हृदय बिदीर्ण होता है, जब पिता ने त्याग दिया, तो माता की क्या सामर्थ्य ? हम बिना निमंत्रण के जायंगे तो हमारे नाथ का अपमान होगा, तो भला यह मैं सह सकती हूं ?

नारद—माता तुम बुद्धिमती हो कर इतना नहीं समझतीं; पिता का घर तो अपना घर है, वहां जाने में फिर निमंत्रण आमंत्रण क्या ? तुम्हें देखने पर क्या फिर प्रजापति का वही भाव रहेगा ? एक लघुता स्वीकार करने से यदि सब ओर रक्षा हो, सब उत्पात मिट

जाय, तो उस को कौन नहीं करेगा? और यह तो विचारो कि लघुता किस के निकट है पिता माता के समीप सन्तान की लघुता गुरुता कैसी? जाने भी दो सब बात समाप्त करो! पिठव्य महाशय कहेंगे कि नारद ही आकर झगड़ा लगा गया है कुछ प्रयोजन नहीं है बाबा, हम बनवासी ऋषि, तपस्वी, फल-मूल खाने वाले, संसारत्यागी, उदासी, सांसारिक मनुष्यों की बात में हम को नहीं रहना चाहिये! कौन पिता, कौन माता, कौन कन्या, कौन स्त्री, कौन पुरुष है किसी बात में नहीं रहते प्रस्थान ही उचित है; कहां है शांतिराम? कहां है? (चारो ओर देख कर) कहां गया? (उच्च स्वर से) शांतिराम हो! शांतिराम!

(नेपथ्य में गुम् गुम् हुम् हुम् धड़् धड़् पड़् पड़् धम् धम् धम् धम् और चिल्लाहट का शब्द।)

अरे यह क्या? यह शब्द तो शांतिराम का चिल्लाना; बात क्या है भाई?

जया—जान पड़ता है कि तुमारे शांतिराम को भूतों ने पकड़ पाया है।

नारद—देखें तो भाई, क्या करते हैं! (सती से) माता, तो अब मैं जाता हूं—

सती—जाओ, अब हम भी देखें—

नारद—उनके बिना आज्ञा?

सती—नहीं बेटा, भला ऐसा कभी हो सकता है?

नारद—तो प्रणाम, देखना जिसमें हम किसी से लज्जित न हों! [प्रस्थान।

(पटाक्षेप)

—❀❀❀—

तीसरा अंक।

प्रथम गर्भाङ्क।

स्थान—कैलाश पर्वत—बिल्वकुंज।

(रोदन करती हुई सती—और शिव बैठे हैं।)

शिव—प्रिये! भला इस के निमित्त रोना क्या? स्वामी के सौभाग्य के संग पितृगृह का सुख निस्सन्देह स्त्रियों के लिये परम सौभाग्य का विषय है, किन्तु सब का भाग्य बराबर तो नहीं होता! स्वामी पक्ष में त्रुटि न होनी चाहिये क्योंकि पितृपक्ष का आदर सर्वदा समान नहीं रहता, इस कारण उस के अभाव होने पर ऐसा नहीं होना चाहिये! तो फिर प्रिये तुम्हीं विचारो, इतना अभिमान! —इसमें दुःख काहे का?"

सती—(सरोदन) हा! नाथ! मैं इस को स्वप्न में भी

न जानती थी कि मेरा वह पक्ष ऐसा होगा ! यह मुझे अत्यन्त नवीन दुःख है; नवीन अस्त्र की भाँति इसकी धार बड़ी तीक्ष्ण है। नाथ ! जैसे बिना गर्जन के मेघ से वज्राघात हो वैसेही यह अकस्मात् घटना हुई ! मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है अब नहीं सहा जाता ! कल्पना करने पर भी नहीं जान पड़ता था कि इस समय मुझे ऐसा क्लेश होगा ! जो पिता राजर्षि और कठोरस्वभाव होने के कारण आमोद और अह्लाद को कभी न जानते थे, किन्तु मुझे पाकर असीम आनन्द, क्रीडा और हर्ष को प्रकाश करते, मुझे देखने पर कठोरता विस्मर्ण कर करुणा रसमें निमग्न हो जाते थे—और, ऋषित्व, प्रवीणत्व, तथा गंभीरता छोड़कर बालकों की भाँति क्रीडा और चातुर्य दिखलाने लगते और सामान्य गृहस्थ पिताकी नाईं स्नेहवश होकर बड़ी मधुरता प्रकाश करते थे, हाय ! उसी पिताने—(रोदन)

शिव —क्यों प्रिये, यहतो असम्भव नहीं है, अबलाओं की तीनों अवस्था की यह व्यवस्था है कि बाल्यावस्था में पिता, यौवन में पति, वृद्धापन में पुत्र से उन्हें सुख मिलता है, फिर इस में सोच क्यों करती हो ?

सती —नाथ, मुझे तो बाल्यावस्थाही का स्मरण आ-

ता है ! (लज्जासे) दूसरी अवस्था कब हुई, यह तो मैं नहीं जानती; आपने अपने गुण से मुझपर संसार का भार देकर गृहिणी बनाया है, परन्तु मैं अभीमाता पिता की बातों को भूल नहीं सकती। न जाने प्रभू के स्वाभाविक प्रेमसुधा को पीकर मत्त हो गई अथवा यह श्रीचरण के किसी अद्भुत आकर्षण का अनुपम गुण है; वा चरणकमल की सेवा के अपूर्व्व सुख का प्रताप है कुछ समझ में नहीं आता कि क्यों मेरा मन कैलास में ऐसा रम रहा है। नाथ ! नहीं तो क्या ऐसी अवस्था मे माया मयी माता को छोड़ कर इतने दिवस यहां ठहरी रहती। नाथ, आपके साथ रहते इतना काल व्यतीत हो गया परन्तु एक दिवस भी मेरा मन चंचल नहीं हुआ, न जाने आज मेरा मन क्यों व्यग्र हो रहा है ?

शिव०—(सहास्य) योग यज्ञ उत्सव देखने के लिये किस बालिका का मन उत्सुक नहीं होता ?

सती०—प्रभो। मैं वह बालिका नहीं हूं—मैं भली भांति अपने मनकी परीक्षा करके निश्चय कहती हूं कि यज्ञ इत्यादि के उत्सव का मेरे मन में कुछ भी संचार नहीं है—आमोद आह्लाद की तनिक भी इच्छा नहीं है। विषय, विभव, अलंकार, एकत्र करने का,

किंचित मात्र लोभ नहीं है ! मैं इसी चरणकमल के प्रसाद से, कैलास की ईश्वरी, नाथ की शिवानी, भव की भवानी, महेश की दासी, महेश्वरी हुई हूं चाहे सामान्य योग हो यज्ञ हो, चाहे इन्द्राणी का असामान्य ऐश्वर्य्य हो, परंतु ये मेरे मन को तनिक भी आकर्षण नहीं कर सकते, ! इससे अधिक बड़ी महिमा और क्या हो सकती है ? किंतु देव ! तौ भी आज माता के देखने को मेरा प्राण अत्यंत व्याकुल हो रहा है--पिता का दर्शन करती, उनसे कुछ वार्तालाप करके व्याकुल चित्त को शान्त करती ।

शिव०—वही पिता न ! जो तुम्हें छोड--तुमारे शिव को छोड़ त्रिलोक को लेकर यज्ञ करते हैं ? तो प्रिये, यह क्या घर ही में अपमान हुआ ? बाहर नहीं ?

सती०—प्रभो ! लोग कहते हैं कि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ट हैं ! और आप के श्रीमुख से भी कई बार सुन चुकी हूं कि पृथ्वी से बड़ी माता और आकाश से ऊंचा पिता दूसरा नहीं है ! यह दूसरों का बचन नहीं केवल नाथ ही का वाक्य महावाक्य है, । वह नाथवाक्य ब्रह्मज्ञान की खानि है उसी को सुन पिता माता और अपनी जन्मभूमि को देखने जाऊंगी

इसमें मान अपमान क्या है ? मैंने अपने स्वामी ही के मुख से सुना है कि जो अबला माता पिता का मर्म्म नहीं जानती, उनकी मर्य्यादा नहीं रखती, उनकी सेवा भक्ति नहीं करती, उनकी प्रियकारिणी नहीं होती, वह स्त्री पति का मर्म्म भी नहीं जानती, पति का मान भी नहीं रखती, पति की सेवा भी नहीं करती, और पति की प्रियपत्नी भी नहीं होती ! तो नाथ ! चाहे जिस पक्ष का बिचार हो, चाहे जैसे माता पिता हों, चाहे जो अवस्था उदय हो, माता पिता के निकट जाने में लज्जा क्या है ? अथवा मान हानिही क्या है ? मेरा जी अत्यत कातर हो रहा है इसी से इतना कहती हूं, नहीं तो भला कभी मैंने आपके सन्मुख इतनी ढिठाई की है ?

शिव० —प्रियतमे ! तुम मधुरभाषिणी सत्यरूपसुधावर्षणी हो। तुमारी एक बात भी अयोग्य नहीं—नीतिशास्त्र के बिरुद्ध नहीं ! किन्तु प्रिये ! मेरे ज्ञान में बिना बुलाये कहीं भी जाना उचित नहीं है !

सती०—भला ऐसी बात क्या मेरे नाथ के मुख से शोभा पाती है ? दूसरे किसी के संग क्या माता पिता की तुलना हो सकती है ? जिनके होने से संसार देखा, जिनके असाध्य साधन से मनुष्य शरीर पाया,

जिनके समान दुःख सुख का भागी दूसरा कोई नहीं जिन से सब कुछ है; वे लोग यदि संतान को भूल जावें तो क्या संतान को भी उन का ऋण भूल जाना उचित है ? यदि किसी कारण से वे अप्रसन्न हो जावें तो क्या सन्तान को भी वैसा ही प्रतिकार करना उचित है ? यदि उन लोगों ने बिना समझे अकारण अभिमान द्वारा अपमान किया तो क्या ऐसे अपमान को "मान" समझ कर उनकी भूल को समझा देने की चेष्टा करनी संतान को उचित नहीं है ? नाथ ! मैं यही समझ कर जाती हूं पिता का मन मिथ्या अभिमान से पूर्ण हो गया है क्या पिता ने हम लोगों का स्नेह त्याग दिया है ? कभी नहीं ! आप ने उनका अपमान किया है अतएव वह भी आपका अपमान करना चाहते हैं—

शिव—प्रिये ! तुमारे जाने से पूरा अपमान होगा, और न जाने से कुछ अपूर्ण—तो क्या उस अपूर्ण अपमान को पूर्ण करने जाओगी ?

सती— नाथ ! इस दासी पर आज इतने निठुर क्यों हुए हो ? आप ज्ञानी हो कर भी जो अबला के मन का भाव नहीं जान सकते, तो यह केवल इस अभागिनी के अदृष्ट का फल है (रोदन) हाय ! मैं अपने

मन का दुःख किससे कहूं ? कौन धीरज देवेगा ? हाय ! अभागिनी अब कहां जाय ? उधर जन्मदाता पिता, इधर सर्वश्रेष्ठ पति, दोनों महापुरुषों ने अपनी २ भावनानुसार अपना २ अपमान समझा उन्होंने किया रोष, इन्हें भी देखतीं हूं घोर असंतोष है पिता ने जामातृ का अपमान करके अपना मान बढ़ाना विचारा है परन्तु मैं दिव्यदृष्टि से देखती हूं कि उन्हीं का मान भंग होवेगा इस अभागिनी को दोनों ओर से विषम कष्ट है ! इस अभागिनी के क्षुद्र जीवनलता के दोनों ओर दो वृक्ष हैं ! एक तो जन्मतरु—जिससे उत्पन्न हुई और दूसरा आश्रयतरु—जिसके अवलम्ब बिना गति नहीं है। प्राणनाथ ! कहो तो अब मैं क्या करूं ? जन्मतरु छिन्न होने पर भी नहीं बचूंगी, और आश्रयतरु के एक पत्ते में भी आंच लगने पर प्राण रहना कठिन है !

शिव—प्रिये ! धैर्य धरो।

सती—नाथ ! बोध नहीं होता, कैसे धैर्य धरूं ? अब उसी जन्मतरु का सर्वनाश देखती हूं। क्या वह अपर है ? वह दूसरे नहीं हैं प्राणेश ! वे मेरे पिता हैं, अतएव आपके भी पितातुल्य हैं और वे आप को छोड़कर और किसी को जानतेही नहीं फिर क्यों उ-

नकी ऐसी बुद्धि हो गई है ? (पिता के स्मरण में हाथ जोड़कर) हा पिता! तुमने क्या किया ? क्यों ऐसे अबूझ होगये ? हाय ! तुम सर्वशास्त्र, सकल तत्व जान कर भी इस मंदभागिनी के भाग्यदोष से भूल गये ? इतनी भ्रांति कि तृण से अग्नि बुझाने लगे ? बालूकण होकर सागर सुखाने चले !।

शिव—सत्य है, तुमारे पिता को घोर भ्रांन्ति उत्पन्न हुई है ! देखते हैं तो घोर विपत्ति उपस्थित है !

सती—तो नाथ ! पिता की यह घोर विपत्ति देख मैं चुप होकर बैठूं ? औरस कन्या होकर क्या मुझे यही कर्तव्य है ? क्यों नाथ ! उनके यहां जाकर उन्हें समझाना उचित नहीं है ? मैं तो उस घर की कन्या हूं, वहां जाने में दोष क्या है ?। यदि मेरी थोड़ी सी छोटाई स्वीकार करने से पिता लोक परलोक के उपस्थित विपत्ति से मुक्ति पावें, तो उस में बाधा देना क्या हमारे ज्ञानी प्राणनाथ के जानने में उचित है ?

शिव—(सविषाद) प्रिये! यद्यपि तुम सर्वगुण की गुणवती हो किंतु फिर भी बालिका हो ! तुम पिता के स्नेह में मुग्ध हो कर अनहोनी बात में व्यर्थ परिश्रम करती हो ! यदि संभव होता तो मैं कदापि बाधा न

देता ! हा मुग्धे ! तुम अपने पिता दक्ष राजा को नहीं जानतीं, इसी से उन के स्थिर संकल्प के खंडन की आशा करती हो ! वे ऐसे पात्र नहीं हैं जो किसी की बात पर ध्यान देवें । वे तुमारी बात कभी नहीं सुनेंगे ! तुमारा अनिमंत्रित गमन और यह वसन भूषण देखकर वे और भी अत्यन्त असंतुष्ट होंगे ! और सब लोग यही कहेंगे, कि भिखारिनी है कभी कुछ देखने, सुनने, खाने, पीने नहीं पाती, अतएव अपमानित होनेपर भी यज्ञ का लोभ नहीं छोड़ सकी—बिना बुला[illegible] चली आई है ! यह सुनकर तुम वहां से रोती [illegible]टती कैलास में आओगी, और तुम को देखकर हमारा हृदय फटने लगेगा ।

सती—नहीं प्रभो ! मैं आप का चरण छू कर कहती हूं, कि यदि पिता मुझ पर वैसी स्नेहदृष्टि नहीं करेंगे और मेरा विनयवाक्य अग्राह्य करेंगे अथवा मेरे प्राणोपम नाथ की निन्दा करेंगे तो मैं वहां क्षण भर भी न ठहरूंगी और न अन्न जल ग्रहण करूंगी और फिर उन के घर कभी न जाऊंगी और न उन्हें पिता शब्द से पुकारूंगी ।

शिव—हा जीवितेश्वरि ! हा पितृवत्सले ! तुमारे इस अनर्थ पितृस्नेह व्याधि की कोई औषधि नहीं है ! मुझे

निश्चय बोध होता है कि तुमारा यह निष्फल पितृ-प्रेम मेरे सुख के निमित्त हलाहल होगा। (दीर्घ-निश्वास त्याग कर) और सब अनिश्चित है।

सती—क्यों नाथ! जगत के मंगलरूप होकर मेरे लिये अमंगल कल्पना करते हो?

शिव—प्रिये! क्या हम अपनी इच्छा से अशिव कल्पना करते हैं? हमें तो अपने मुंह से तुमारे सामने कहना न चाहिये, परन्तु बिना कहे तुमारा बोध भी नहीं हो सक्ता, तुम्हीं समझ कर देखो तो कि जिस यज्ञ में शिव नहीं, उस में अशिव के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

सती—नाथ! मैं इसीलिये जाती हूं कि जिस में यज्ञ मंगलहीन न हो वरन मंगलमय हो।

शिव—हा बालबुद्धे! हम देखते हैं कि अत्यन्त पितृभक्ति से तुमारी बुद्धि अल्प हो गई है तुम्हारे उसी पितृ-वात्सल्य गुण—या गुण भी उस को कैसे कहैं—उसी दोष से तुमारे पति का सर्व्वनाश हुआ चाहता है। हा दाक्षायणी! दक्षकन्ये! तुही शिव का सर्वस्व धन है क्या तू नहीं जानती? मैंने अनेक तप अनेक साधन अनेक यत्न से यह हृदयमणि पाई है आज उसी धन से बंचित होता हूं। हा प्रिये! तुम्हें छोड़

इस त्रिलोक में शिव का दूसरा कोई नहीं। पिता, माता, भ्राता, ज्ञाति बांधव या और कोई हई नहीं है! तुम्हीं हमारे अंधकार की एक मात्र चंद्रिका हो; निर्व्वान्धवतारूप मरुभूमि की एकमात्र लतिका हो; तुम्हीं हमारे मृत देह की जीवसंचारिका; हृदयानन्द, लोचनानन्ददायिका हो; हा सती! जिस पति की दूसरी गति नहीं, जो पति तुमारे पलक भोक्ष और तिलार्द्धभिन्न होने से त्रिलोक को शून्य देखता है वह तुमारे बिना कैसे प्राण रक्खैगा? यह भी तो एक बार बिचारतो कि तुमारे शिवमय प्राण को मर्म्मव्यथा होगी। क्या इतना भी नहीं समझती हो?

सती—नाथ! मैं कातर हो कर तुमारा चरण धरती हूं मुझे आप इतना मत रोकिये, आप जो २ कहते हैं मैं सब जानती हूं; किन्तु यदि नितान्त कर्तव्य बोध न होता तो मैं कभी जाना न चाहती।

शिव—प्रिये! मैं तुम को कुछ भी बाधा नहीं देता परंतु इस बात में बिना बाधा दिये नहीं रहा जाता मुझ में जितनी सहनशीलता है तुम सब जानती हो; अमरगण सब प्रकार अपूर्व्व भूषण, वाहन, ऐश्वर्य्य-युक्त और श्रीमान् हैं, परन्तु मैं सब को त्याग कर वाहन, भूषण के बिभव से ही सन्तुष्ट हूं। देखो सब

ने अमृत पान किया, मैंने विष ! सब को बहुत कुछ है मुझे केवल एक सन्तोष है, और उसी से मेरा नाम असुतोष है ! मुझ में कोई अशुभ नहीं है इसी से मेरा नाम शिव है ! किन्तु प्रिये, आज इस बात से मेरी सहनशीलता की परीक्षा, आनन्द का व्याघात, मंगल का अभाव हो गया ! हाय ! तुमारी बातों से मुझे किसी प्रकार बोध नहीं होता, धीरज धरने से मेरा मन अधिक अधीर हुआ जाता है, अहर्निशि मेरे हृदयाकाश में सतीरूपी शशि की पूर्णमासी निरन्तर अटल और अपरिवर्त्य भाव से शोभा देती है परन्तु आज हिलतेहुये जल में चन्द्रप्रतिबिम्ब की भांति चंचल हो रहा है, आज यह जान पड़ता है कि मानो उस निधि को कोई छीने लेता है। अतएव प्रिये ! भिक्षा दो, और चंचला मत हो, इस पागल को एक बार फी पागल मत बनाओ !

सती—प्राणवल्लभ ! मैं आप का चरण कमल छू कर प्रतिज्ञा करती हूं, केवल इसी बार पित्रालय जाने की आज्ञा दीजिये यदि पिता का भाव न बदल सकूंगी तो जब फिर कर कैलास में आऊंगी तो ऐसे भाव से आऊंगी कि पुन: आप से पृथक् न होऊंगी और फिर कभी माता पिता का नाम भी न लूंगी,

स्नेह, और ममता को सर्वदा के लिये भूल जाऊंगी, फिर अपने को दाक्षायणी न कहूंगी मानो यह जन्म त्याग कर अन्य जन्म ग्रहण कर आऊंगी।

शिव—(दीर्घनिश्वास त्याग पूर्व्वक) प्रिये! तुम इच्छामयी हो, अपनी इच्छा को तुम स्वयम् जानती हो, तुम महामाया हो, अपनी माया आप ही बूझ सक्ती हो जसी रुचि हो वसा करो अब निषेध न करूंगा, अब गृह में भी न रहूंगा बरन देखो इस पागल को कभी भूलना मत, नारायण तुमारा मंगल करें! (नेपथ्य की ओर नन्दी से) नन्दी! रथ प्रस्तुत कर दक्ष के घर जाओ—सावधान! सावधान! सावधान!

(पटाक्षेप)

(नेपथ्य में गीत।)

(रागिनी मुलतानी—ताल जद् तिताला)

कैसे रहैगो भौन। बढ्यो बिपति को पौन। कैसे०।
सती तजत अब सुख कानन को करत पिता गृह गौन।
गृही भयो जेहि लगि शिवयोगी,जाति शिवहि तजि तौन॥
शिव सरबस धन सोइ नहीं तब, जीवन आशा कौन।
उदित भयो बिषाद कैलासहि, अशिव यज्ञ सुनि श्रौन।

(दूसरा गर्भाङ्क)

(स्थान कैलास पर्वत—सती का गृह)

(कपोल पर हाथ रखे हुए सती बैठी हैं।)

सती—(स्वगत) भला यह कभी होने को है? मैं देखती हूं कि स्वामी ने जो कुछ कहा है वही होगा, पिता जी मेरा कहना कभी न मानेंगे। उस बड़वा-नल अग्नि का मेरे करुणाजल से क्या होने वाला है? तो क्या मै जाऊं? बरन दूर ही रहना अच्छा है जिससे उसका ताप न लगे; यदि निकट जाने पर अधिक उद्दीप्त हुई तो सहा न जावेगा, भस्म ही होना पड़ेगा (क्षणमात्र मौन धारण कर के) तो निश्चिन्त हो कर बैठूं, वा क्या करूं? यत्न बिना कुछ भी नहीं होता; कदाचित् मुझे देखने से किंचित मात्र उनका भाव बदल जाय। जिस कन्या के गोद में रहने पर वे आहार निद्रा नहीं करते थे, क्या वह पर्वतरूपी प्रेम तुच्छ रागरूपी गोष्पद मेंम ग्न हो जावेगा। दूर से मैं उस विपत्ति को इतना बड़ा क्यों समझती हूं भला निकट चल कर तो देखूं? चित्त में तो आता है, कि मनोर्थ पूर्ण होगा! परन्तु यदि पूर्ण न हुआ तो सहा भी न जावेगा और न प्राण रहेगा; सब दुख सह सकती हूं परन्तु अपने नाथ का अपमान—

(जया का प्रवेश)

जया—माता पुष्कर मेघ आये हैं।

सती—क्यों जया ?

जया—वह कहते हैं कि माता पितृगृह को जाती हैं, मार्ग बड़ी दूर और धूप भी अत्यन्त कड़ी है, इसी से वह तुम्हारे सिर पर छत्र की भांति होकर चला चाहते हैं! और कहोगी तो थोड़ी २ वृष्टि भी करेंगे।

सती—(मृदु स्वर से) नहीं पुत्री! मुझे इतने सुख से कुछ प्रयोजन नहीं है।

जया—क्यों माता, इसमें क्या दोष है ?

सती—नहीं बेटा! मुझको ऐसे आडम्बर की कोई आवश्यकता नहीं जो ताप हृदय के भीतर है उसको तो वह निवारण नहीं न कर सकता; तो फिर तपन का ताप क्या ? तुच्छ है!

जया—तो उनसे क्या कहूं ?

सती—मेरा आशीर्वाद देकर कहो कि बेला चली गई अब धूप नहीं है, उनको कष्ट करने की कुछ आवश्यकता नहीं। [जया का प्रस्थान।

सती—(स्वगत) जब दूसरे मुझ पर दया करते हैं—तो क्या पिता निर्दय होवेंगे ?

(विजया का प्रवेश)

विजया—माता। पवन आये हैं!

सती—क्यों बेटा ! पवन क्यों आये हैं ?

विजया—आप का पित्रालय गमन सुन कर पवन भी आप के साथ धीरे २ गमन किया चाहते हैं, कहते हैं कि जेठ मांस की बड़ी कड़ी धूप होती है और बिधाता के नियमानुसार पवन की गति रुकजाती है अथवा आंधी चलती है परन्तु यदि आप की आज्ञा हो तो मन्द २ मलय पवन बह सकता है !।

सती—नहीं बेटा ! जगत के हित निमित्त जैसी उसकी स्वाभाविक गति है वैसी ही रहनी चाहिये मेरे लिये भिन्न भाव धारण करने की आवश्यकता नहीं, बरन यह कह दो कि जिस प्रकार इस समय बाहर वायु का रोध है जब प्रयोजन हो तो स्मरण करने पर उसी प्रकार आन्तरीय वायु को भी रोक देवे ।

बिजया—माता ! यह क्या कहती हो ?

सती—(व्यग्र भाव से) जो मैं कहती हूं वही कह दो !

(सबिषाद बिजया का प्रस्थान)

सती—(स्वगत) हाय ! पित्रालय की यात्रा सुनकर सब को आह्लाद हुआ है परन्तु जिस भाव से मैं जाती हूं, उसको ये लोग भला—

(नन्दी का प्रवेश)

नन्दी ! (हाथ जोड़ कर) माता ! कुबेर आये हैं !

सती—वत्स ! किस प्रयोजन से ?

नन्दी—आप पित्रालय जाँयगी और वहां त्रिभुवन का समारोह होगा, आप इसी बेष से कैसे यात्रा करेंगी ? इसी लिये वे अनेक प्रकार के बसन, भूषण, ले कर द्वार पर खड़े हैं, आज्ञा हो तो सब कुछ लेकर सेवा में उपस्थित हों।

सती—वत्स जाओ ! कुवेर से हमारा आशीर्वाद देकर कह दो कि हमें किसी वस्तु की कुछ आवश्यकता नहीं है !

नन्दी—माता ! मैंने उनसे यह बात सविस्तर और सतर्क कही थी परन्तु उन्हों ने कुछ ध्यान नहीं दिया !

सती—नन्दि ! किस बात पर तर्क किया था ?

नन्दी—मैंने उनसे कहा था कि माता के चरण कमल मे चंदन मिलित एक जवा के भी फल से अर्घ देने पर उसको इतनी शोभा होती है कि सहस्त्रों कुवेर के भंडार लाखों सूर्य्यकान्ति, चन्द्रकान्ति, नीलकान्त मणि की कुछ गिनती नहीं रहता ! कुवेर तुम व्यर्थ यत्न मत करो ! हमारे माता को और किसी वस्तु की इच्छा नहीं है, उनको अलंकार क्या ? (एक क्षण मौन होकर) माता ! साहस करके एक बात कहूं ?

सती—वत्स ! निडर हो कर कहो !

नन्दी—माता! मैंने यह समझा—कि माता के अंगों में गहने पहनाने से अब जैसी हम लोगों की माता है, फिर वैसी नहीं रहैगी; जैसे—जैसे—जैसे कुवेर की माता, जैसे मातुली की माता, जैसे बैकुंठ की माता हैं, वैसीही हो जावैंगी; तौ भी उन्होंने अनेक बिनय करके मुझे भेज दिया है!

सती—वत्स नन्दि! तुम ऐसाही करो, जिसमें मैं तुम लोगों की माता बनी रहूं—और किसी की माता होने से मुझे लज्जा होगी!

नन्दी—(प्रणाम पूर्व्वक) माता! आज "माता" के कहने से और भी हृदय शीतल हो गया।

[प्रस्थान।

सती—(स्वगत) हा पिता! मेरे इतने सुख और इतने आनन्द को आपने निरानन्द कर दिया! हा निर्दय विधि! इस सुख की कीर्त्ति क्या तेरे नेत्र से न सही गयी!

(जया और बिजया का शीघ्रता से प्रवेश)

दोनों०—माता! मौसी लोग आई हैं!

सती—(म्लान भाव से) कहां हैं?

दोनों—रथ दूर खड़ा करके वे लोग पैदल आती हैं, पहुंची चाहती हैं!

सती—जया ! तुम जाओ भागी से ले आओ । बिजया ! उसी पत्ते के आसन को लाकर बिछा दो पुत्री !

(दोनों जाती हैं)

सती—(स्वगत) क्या वे हमारे दुःख से दुखी नहीं होंगी ? जो पवन दावानल का सहायक है, वही दीपक को बुझा देता है, सुअवसर में जो सहायता करता है वही कुसमय में विपक्ष हो जाता है ! देखें कैसे क्या होता है ?   (विजया का प्रवेश)

विजया—तीन [illegible]ी तो आ गईं, आती हुई देख पड़ती हैं, कहो [illegible]सन लगाऊं ?

सती—तो तीन ही आसन लगा दो !

[अश्विनी, अश्लेषा, मघा के सहित जया का प्रवेश]

मघा—(सती को देख कर अश्लेषा से) ये बहिन ! यह क्या ? यह क्या हम लोगों की वही सती है ?

(सती का प्रणाम और रोदन)

अश्विनी—क्यों सती, रोती क्यों हो ? जैसी तुमारी तपस्या थी वैसे ही घर पड़ीं ! सब का व्याह क्या बड़ेही घर में होता है ? अब क्या करोगी बहिन चुप रहो !

मघा—कितने दिन पर देखा देखी हुई आज हँसना, खेलना, आमोद करना चाहिये, रोती क्यों हो यह कैसा बिचार है ?

जया--माता क्या इसी से रोती हैं, तुम लोग जो ऐसी बात कहती हो उसी से और रोती हैं।

अश्लेषा—हां तो फिर क्या? शिव तो सकुशल हैं?

विजया—मैं बलि जांव, भला वे सकुशल क्यों न रहेंगे?

अश्वि०—सती! तो क्यों इतना रोती हो बहिन कहती क्यों नहीं?

मघा—(जया से) भला जया! इस बीच में कोई सन्तान इत्यादि होकर जाता तो नहीं रहा?

जया—राम २—भला ऐसा क्यों होने लगा?

मघा—तो और क्या हुआ है? और [illegible] बात पूछूं? भूतपत्नी तो सब आनन्द से हैं न? (हास्य)

अश्ले०—(सहास्य) क्या बूढ़ा बैल तो नहीं मरा?

अश्वि०—कैसी बात कहती हो? सती क्या तुमारी ननद है? तुमारी छोटी बहिन न है? वह किस दुख से रोती है, सो तो जानती नहीं, उलटा परिहास—(सती से) सती तुम हमारा माथ छूओ जो अब रोओ, (अंचल से आंख पोंछ कर) चुप रहो, क्या हुआ सो कहो, हमारी सपथ करके स्पष्ट कहो।

सती—बहिन! मेरे संग तुम लोगों का कोई संबंध नहीं है। तुम लोग क्यों इस जन्मदुःखिनी अभागिनी के निकट आकर बुझी हुई अग्नि को पुनः जलाती हो?

मघा—(धीरे अश्लेषा से) मैंने तभी बड़ी बहिन को निषेध किया था कि यहां आने का कुछ प्रयोजन नहीं—न्यौता हँकारी तो जाता रहा। सत्य है, अड़बंगी घर का सब कामही अड़बंगा होता है।

अश्ले०—(अंगुली दबाकर) चुप रहो !

अश्वि०—(सती से) छि· बहिन ! ऐसी बात क्यों ? तुम हम लोगों में सब से छोटी हो—

मघा०—और माता पिता के आदर की पुत्री हो !

अश्वि०—यह तो हुई है ! सब से अधिक आदर की पात्री हैं, तुम ऐसी बात न कहो ! सब की अवस्था क्या बराबर होती है बहिन ? तो भी (सती के प्रति) तुम इस घर की अकेली स्वामिनी हो; नित्त का लड़ाई झगड़ा, बांट बखरा, कलह इत्यादि तो नहीं है ! तो फिर खेद क्यों करती हो ? सम्बंध क्यों उठाती हो ?

मघा०—बहिन ! मैं कहती हूं कि इससे तो बरन बांट बखरा अच्छा, कुछ होने पर व्यवस्था होती है; जिस के पास कुछ हई नहीं, उसको एका क्या दुका क्या, और बांट बखरा क्या होगा ? और जिसके पास कुछ है, उसको सौ बखरा होने पर भी कुछ रहता ही है (मृदु स्वर से) इसको साची तो हमीं लोगों का घर है, देखलो और यह घर भी देखो ! हम लोगों

का अलंकारभूषित शरीर देखो। और इनकी देह भी देख लो !

अग्नि०—क्या तुम चुप नहीं बैठ सकतीं ? तुमारे संग कहीं जाना भी एक आपत्ति है।

मघा०—तुमारा संग भी करना निषेध है!

अग्नि०—इतना नहीं!

मघा०—जितना हो, तो भी हुई है!

अश्वि०—नारायण नारायण ! तुम लोग क्या यहां बिवाद करने आई हो ! तुम लोगों को उचित था कि इस दुःखिनी के दुख की भागी होतीं सो तो हुआ नहीं अपने २ गर्व्व में मत्त हो !

मघा०—भला गर्व्व क्या देखा ?

अश्वि०—यह तो तुम लोगों का दोष नहीं, यह मेरे यात्रा ही का दोष है। (सतीसे) बहिन ! मैं पूछती हूं कि यह कठोर बचन कि "सम्बन्ध उठ गया" तुमने हमारे किस दोष से कहा ?

सती०—तुमारा दोष नहीं है बहिन !

अग्नि०औ मघा—तो क्या हम लोगों का दोष है सती ?

सती०—नहीं बहिन! तुम लोगों का भी दोष नहीं, मेरे निज भाग्य-दोष से सम्बन्ध उठ गया। [रोदन।

अश्वि०—फिर वही बात ! फिर रोना ! कैसे हम लोगों

ने संबन्ध उठाया ? सो तो समझ में नहीं आता ! एक बात समझ में यथार्थ आती है, कि हम लोगों ने कभी बैना, भाजी, नहीं भेजा ! उसका भी कारण यह है कि जिस घर पांच प्राणी होती हैं उससे यह सब काम उत्तम रीत से नहीं होता !

सती०—नहीं बहिन ! मै वह बात नहीं कहती !

अखि०—तो फिर कैसे हमने संबन्ध उठाया ? जो उठातीं तो आतीं कैसे ?

सती०—बहिन ! तुम लोगों ने नहीं उठाया; पिता—

[उच्च स्वर से रोदन ।

अखि०—क्यों, पिता ने क्या तुमारे बुलाने के लिये किसी को नहीं भेजा ?

अश्वि०—ऐसा भी कभी हो सकता है ?

मघा०—ऐसा हुआ होगा कि कोई आकर फिर गया होगा ! क्योंकि यहां भूतों का भय है—हमी लोग भागी जाती थीं भाग्यवश उसी बनरमुहे ने—नन्दी है या जाने कौन है —पहिचाना, उसी से तो आने पायीं !

अश्वि०—यह भी हो सकता है कि कोई आया होगा, परंतु पर्वत पर न चढ़ सका होगा, नीचेही से देख कर भाग गया हो !

विज०—माता ! भला ऐसा भी कभी हुआ है कि माता पिता के घर से आये हुये व्यक्ति से कोई कुछ बोल सकता है ?

जया०—नहीं मौसी ! वह सब कुछ नहीं—नाना जी (दक्ष) को क्रोध हुआ है; अतएव माता को भी नहीं बुलाया, पिता को भी नहीं, और हमलोगों को भला कौन पूछता है !

अखि०—क्यों ?

मघा०—क्यों क्या ? देवसभा, गंधर्व्वसभा, राजर्षि, राज चक्रवर्ती लोगों की सभा होगी, उसके बीच में— कहते तो लाज आती है, पंचानन जी अपना विलक्षण साज साजे फिरेंगे—

सती—(नेत्र से जल पोंछ कर कोपदृष्टि से) अब बस ! सब यथेष्ट हुआ है; अब इस स्थान पर न रहूंगी ।

(जाने को उद्यत होती हैं ।)

अखि०—(पकड़ कर) सती ! हमारी सपथ करो ! बहिन ! जाओ तो हमारे रक्त से अपना पांव धोओ ! (मघा से) तुम को क्या कुछ भी बुद्धि नहीं है ?

मघा—(धीरे से) हे परमेश्वर ! इतना ? तभी तो !

अश्वि०—भला सती ! हमलोगों के ऐसे सुन्दर पति चंद्र हैं

उनकों भी कलंक है—उन्हें भी सब लोग हमारे मुख ही पर कलङ्की कहा करते हैं! हम लोग तो सत्ताईस जनी उनकी स्त्री हैं,—सो भी कुछ ऐसी वैसी नहीं—एक २ जनी एक २ इन्द्राणी का सुख भोग करती हैं—तो क्या, हमलोग तो उनकी निन्दा सुन्ने पर कभी ओंठ भी नहीं खोलतीं! तुम को यह क्या हुआ, कि एक बात भी नहीं सह सकतीं? हम लोग तो शिव की साली हैं, परिहास सहित भली भांति दो बात कह भी सकती हैं!

सती—बहिन! जो सहै सो सहै, मुझ से तो नहीं सहा जाता!

मघा—क्या परिहास भी नहीं सह सकतीं?

सती—जिस को परिहास की आवश्यकता हो, उसे करो! मुझ से क्यों करती हो?

मघा—(धीरे से) देखो न जो कहीं अच्छे होते तो—

सती—चाहे भले हों, वा मन्द हों, मुझे वेही अच्छे हैं।

मघा—तुम को अच्छे हैं तो क्या इस्से दूसरों का मुंह भी बन्द करोगी?।

सती—यह तो हो ही नहीं सक्ता! किन्तु बहिन! गुरुजन की निन्दा, जो सुनता है, वह महापातकी है। जिस स्थान पर निन्दा होती है, वहां से निन्दक को हटा·

ना नहीं तो अपना ही प्राण त्याग करना उचित है ! पिता जो ऐसे श्रेष्ट हैं, तो पति उनसे भी श्रेष्ट हैं वरन जगत में सब से श्रेष्ट हैं, उनकी निन्दा क्यों सुनूंगी ?

अग्नि०—निन्दा का काम करने से सुनना ही पड़ता है।

सती०—उन्होंने कौन सा निन्दनीय कर्म किया है, वे तुम लोगों के निकट क्यों अपराधी हैं ? सम्बन्ध से तो वे तुम लोगों के स्नेहपात्र हो सकते हैं ? सो न हो कर उलटे अपराधी हुये; तुम लोग मेरी ज्येष्टा सहोदरा हो, तुम लोगों के मुंह से कोई अच्छी बात, दया मया का वृत्तान्त, सुनीति की चर्चा सुनती वह तो हुआ ही नहीं, उलटे यह;—पिता के निर्दय होने का वृत्तान्त सुन कर मुझ पर पहले से द्विगुणित ममता, स्नेह और कृपा प्रकाश करतीं, जिनसे मातृवत् सत्यस्नेह और वात्सल्य की आशा थी उनसे यह उलटा हास्य परिहास और श्लेष—इस प्रकार की घृणा और कठोरता, भला इसे मेरा प्राण कभी सह सकता है ? परन्तु बहिनों ! तुम लोगों का दोष क्या है ? यह सब मेरे भाग्य का फल है। (रोदन) मेरे भाग्य ही फूटे हैं।

अखि०—सती ! क्या करती हो ? क्यों तुच्छ बातें कहती हो ? मैं बलि जाऊं तुमारा अभाग्य कैसा ?

सती०—बहिनं, मैं तो नितान्त अभागिनी हूं, नहीं तो जो पिता प्राण से भी अधिक स्नेह करते थे, हाय ! उन्हीं पिताजी ने आजन्म जलाञ्जली प्रदान की! भला इस दुःख का कहीं ठिकाना है ? हा विधाता ! इस दारुण यज्ञानुष्ठान के पूर्व्व ही तूने मेरी आयु समाप्त क्यों न कर दी ! हा नागराज ! तुम प्राणनाथ के शिरोभूषण हो कर भी इतने दिन लों उन की पार्श्ववर्तिनी, इस अभागिनी को डस न सके। हा सिंधुगर्भज कालकूट ! तुम हृदयनाथ के कंठ में निवास करते हो, परन्तु उन की हृदयबासिनी दुर्गा की अपार दुर्गति भोगते समय एक बुन्द भी उस के कंठ में न प्रवेश कर सके ! हा अग्नि देव ! तुम प्रभु के ललाटवासी हो कर भी, मेरे भाग्यजनित दुःख के निवारण के लिये इतने काल तक साथ रह कर भी दग्ध कर सके! नहीं २ मैं भूलती हूं तुम कभी नहीं करोगे क्योंकि तुम जानते हो न कि यदि ऐसा करोगे तो पिता (दक्ष) तुम्हें आहुति भाग न देंगे, वास्तविक में यदि तुम को इसी का भय है तो यह तुमारी निरी अज्ञानता है, शुष्ककाष्टानल में इस दुर्भारवाही शरीर को अभी आहुति देती हूं, देखूं तुम दग्ध करते हो कि नहीं !

अश्वि०—सती ! बहिन ! धीरज धरो विनयपूर्व्वक हाथ धर कर भीख मांगती हूं धीरज धरो मुझ से अपराध हुआ मैं स्वयम् स्वीकार करती हूं कि मुझ से बड़ा अनुचित कर्म्म हुआ अकेली नहीं आई इसी से दोष भागी हुई। यदि मैं अकेली आती, तो न तुम्हें क्रोध होता, और न मेरा हृदय इतना कष्ट पाता ! परन्तु न जाने पहलेही से कैसा चित्त हो गया था मैं नहीं जानती कि तुम क्यों ऐसी हो गई ? (जया के प्रति) जया तू भी कुछ नहीं बोलती, पिता ने क्यों ऐसा प्रण किया है? तू तो अवश्य ही जानती होगी—

जया०—क्या कहूं मौसी ! भृगुमुनि के यज्ञ में, वा जाने कहां नाना को देखकर पिता ने उठकर सन्मान नहीं किया इसी कारण क्रोधवश हो कर उन्होंने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया है; उस में स्वर्ग, मर्त्य, पाताल बासियों को बुलाया है, केवल हम्हीं लोगों को नहीं बुलाया !

अश्वि०—हम लोग यह क्या जानती थीं ? यदि मघा ने अजान में एक बात कह दिया तो क्या हो गया ? उसी पर इतना क्रोध ?

मघा—मैंने क्या अकेली ही कहा है ? यह देखो कैसी चतुराई से निपुण बनती हैं !

अग्नि०—तुम्हीं ने तो देवसभा, गंधर्वसभा, की चर्चा चलाई थी।

मधा०—तुमने भी तो चन्द्रकलङ्क की बात कही थी।

अग्नि०—फिर तुम लोग उसे दुहराने लगीं? क्या तुम लोगों को कुछ भी समझ नहीं है? अब ऐसा करोगी, तो मैं चली जाऊंगी। तुम्हारे पांव पड़ूं क्षण भर चुप रहो न! (सती के प्रति) भला बहिन! पिता ने जो निमंत्रण नहीं दिया तो क्या माता ने भी कुछ नहीं कहला भेजा? जया! तूने किस के मुख से सुना?

बिज०—क्यों प्रात:काल नारद—

जया०—किसी के मुंह से सुना हो; नानी ने तो बुला भेजा था किन्तु नाना जी ने निषेध किया है।

अग्नि०—बिजया क्या कहती है?

मधा०—बिजया और क्या कहैगी? जया कितना ही छिपावे परन्तु बिजया की आधी ही बात से मैं समझ गई कि उसी सत्यानाशी नारद ने आकर आज यह सर्व्वनाश की चर्चा चलाई है, यह दूसरे का काम नहीं है।

जया०—क्यों, नारद का क्या दोष है?

मधा०—दोष क्या? वही सत्यानाशी तो छल से यह बात कह गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं!

अश्वि०—चाहे उसी ने ऐसा किया, चाहे बातही सत्य हो।

मघा०—यह बात कभी सत्य नहीं है !

अश्वि०—नहीं ! यदि कुछ सत्य भी हो, तौ भी सती ! तुम को यह समझना चाहिये, कि पिता पुरुष हैं, सभा में लज्जा अवश्य ही हुई होगी, इससे वे क्रोध कर सकते हैं, परन्तु जब माता ने बुला भेजा तो फिर पिता के कहने की कुछ आवश्यकताही न रही ?

अश्ले०—सत्य तो कहती हैं और कैसे बुलाया जाता है ? जो हम लोगों को बुलाने गया था वही तुम से भी कह गया है ! क्या हम लोगों को ले जाने के लिये हाथी घोड़ा आया था ? वैसे ही तुम्हारे निमित्त भी कुछ नहीं आया ! हम लोग तो सुनते ही आह्लाद पूर्वक नाच उठीं, आनन्दचित्त से अपना गहना कपड़ा पहिन अपने ही रथ पर जाती हैं।

सती०—बहिन ! जो कहती हो वह सत्य है, केवल एक विशेषता यह है कि—

अश्ले०—विशेषता क्या ? सुनें तो ? जो हमारे है वही तुमारे भी है ।

सती०—हाय ! इस विशेषता को क्या स्पष्ट कहना पड़ेगा ? "हम लोगों का, तुम लोगों का, हम लोग, तुम लोग" यही जो विलग की बात कहती हो,

यही विशेषता है—माता और पिता, दोनों ने चन्द्रलोक निवासी पुत्री और जामाता को बुला भेजा है, और यहां से माता ने चुपके केवल मुझेही बुलाया है! पिता ने कहा था कि कैलास में मत जाना, तुम्हारे जीजा का और मेरा नाम मत लेना। माता ने पिता के बिना कहे नारद से यह कह दिया था कि चुपके २ सती से आने को कह देना; परन्तु नाथ को चुपके से बुलाने के लिये भी उन्हें साहस न हुआ!

अश्वि॰—इस में हानि क्या है? माता पिता क्या दो हैं? वह गृह क्या दो व्यक्ति का है? यदि तुम माता के बुलाने पर आओगी तो इस में दोष क्या है?

सती॰—हाय बहिन! जिसके हृदय में आग धधकती है वही उस की ज्वाला वा जलन जानता है, दूसरा नहीं जान सकता! मैं पिता के न बुलाने के अभिमान को तुच्छ समझती हूं, माता ने बुलाया है यह तो यथार्थ है, देखो इस त्रिभुवन में ऐसा कोई नहीं जो तुम्हारे जीजा को छोड़कर यज्ञ का अनुष्ठान कर सके परन्तु उन्हीं सुरनरमुनि पूजित नाथ को पिता ने त्याग किया, अब जो कुछ उन का अपमान होना था सो तो हो गया भला मैं अपने प्राणनाथ का इतना अपमान होने पर भी प्रमुदित होकर यज्ञ देखने जा-

ऊंगी और फिर कर आऊंगी, क्या यही उचित है ?

मघा—(अश्लेषा के प्रति धीरे से) जो कहीं बूढ़े न होते—

अश्ले०—(मघा के प्रति धीरे से) और जो यदि दस बारह गहना दे सकते—!

मघा—(अश्लेषा के प्रति धीरे से) तब तो न जानें यह क्या करती ?

अश्वि०—(सती के प्रति) क्या जानें बहिन, इतना फेरफार कुछ समझ में नहीं आता मैं तो अवाक हो गई हूं—मुझे कुछ नहीं सूझता—यद्यपि मैं तुम सभों से बड़ी हूं, परन्तु इस समय की बातों के सुनने से हक्कीबक्की हो गई हूं। इससे तो—मेरा यहां न आनाही अच्छा था !

मघा०—क्यों ? मैंने तो पूर्वही निषेध किया था !

अश्ले०—मैंने भी तो कहा था !

मघा०—तुमने निषेध किया था ? वरन तुम्हीं ने तो हठ करके कहा, कि चलो न चलें, इसीसे तो मैं भी आई !

सती—(कुछ सोचकर) अच्छा बहिनो ! तुम लोग जाओ, यदि बन पड़ेगा तो मैं भी आऊंगी !

अश्वि०—फिर "बन पड़ेगा" क्यों कहती हो ? बन क्यों न पड़ेगा ? चलो न साथही चलें ।

सती—बहिन। वह नहीं होने का, मुझे अभी कुछ काम है।

अग्नि०—कौन काम है? उनसे पूछना है?

मघा—बहिन, यह कैसी बात कहती हो? क्या पिता के घर जाने के निमित्त स्वामी से भी पूछने की आवश्यकता होती है? तू तो सती अब सब के सिर पर पैर देती है!

सती—बहिन, उनसे कुछ पूछना जाँचना नहीं है, तुम लोग जाओ, मैं पीछे से आऊंगी।

अग्नि०—फिर पीछे क्यों? क्या साज शृङ्गार करना है? तो लो हमही लोग करे देती हैं। आभूषण इत्यादि कुछ है? (सती को चुप देख कर) जाने दो, नहीं है तो न सही, उस के लिये सोच क्या है? हम लोग सताईस बहिन हैं यदि एक २ अलंकार उतार कर दे दें तो तुमारे शरीर पर रखने की जगह न मिले (अपने अंग से एक उत्तम सा अलंकार उतार देने को उद्यत होती—है फिर मघा के प्रति) मघा, खड़ी क्यों है? दे न एक ठो?

सती—नहीं, नहीं, बहिन! तुम लोगों को कष्ट करने का कुछ प्रयोजन नहीं, मुझे कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

(शान्तिराम का प्रवेश)

शा०—रथ में जोत्यो बैल, सो ठाढ़ो है द्वार पै ।
जाय न दूजी गैल, है याही चिन्ता कठिन ॥
शिघ्र करहु प्रस्थान, नन्दीह अकुलात है ।
तजो अबै यह ठाम, राखी मैं चलिहौ कहां ॥

अश्लि०—बहिन, यह कौन है ?

मघा—कोई भूत होगा ।

शा०—पांच भूत का एकै भूत, भूत नचावत है यह भूत ॥
भूतहि देखत है यह भूत, हृदये देखो तो अद्‌भूत !
शान्तहि चीन्ह सकत है भूत ! शान्त जी आवत मुर्दा भूत
[प्रस्थान ।

मघा—बहिन ! यह क्या बक कर चला गया ?

आश्लि०—वहीं, बैल और रथ की बातें कहता था ।

मघा—बहिन ! भला बैल का रथ क्या ?

अश्वि०—यह क्यों सती ? बैल के रथ पर क्यों जाओगी ? मेरे पास दिव्य रथ है, उसी पर हम सब लोग एक संगही न चलें, आओ, यह सब पहिनो,—अब चलो, बिलम्ब का कोई प्रयोजन नहीं है !

सती—बहिन ! क्षमा करो ! मुझे अलंकार से कुछ प्रयोजन नहीं है, तुम लोग जाओ !

अश्वि०—तुम नहीं चलोगी, तो हम लोग भी नहीं जांयगी ?

सती—अच्छा चलती हूं (जया को इंगित करके बुलाती है)

[जया के सहित सती का प्रस्थान।

मघा—बहिन! मुझे चाहे भला कहो अथवा मन्द, किन्तु पागल के संग सती भी पागल हो गई है!

आश्ले०—नहीं जानतीं! "भले संग से काशी बास, असत् संग से सर्व्वसनाश।"

अश्वि०—जो हो, सती कहां गई?

मघा०—जान पड़ता है कि पति से आज्ञा लेने गई है!

(जया का प्रवेश)

अश्वि०—जया! सती कहां है?

जया—(सजलनयन) माता चली गईं!

अश्वि०—कहां?

जया—पिता जी के घर।

अश्वि०—क्यों?—कैसे गई?

जया—वृष के रथ पर!

विजया—तो क्या हम लोग न जांयगी?

जया—नहीं—नहीं ले गईं! (रोदन)

अश्वि०—यह क्यों? क्या हम लोगों को छोड़ कर अकेलीही चली गई?

मघा—अड़बंगी घर का सब काम उलटा !

अखि०—भला चलो तो देखैं, क्या सचमुच चली गई ?

(सब जाती हैं)

(पटाक्षेप)

—※※※—

(नेपथ्य में गीत)

(रागिनी गौरी व मलार ताल धीमा तिताला)

माइ बिनु सहि न जात दुख भारी ॥
शून्य भयो कैलास भवन अब, बिपति सके को टारी ।
केहि अपराध तजी दामिन को, आपु भई सुखकारी ॥
केहि चरनन सेइब निसदिन केहि, माता कहब पुकारी ।
बिजया जया संगिनी हम सब कुकुजिय नाहिं बिचारी ॥
गई अकेली संग नहि लीन्हीं, हम कहँ छोड़ि सिधारी ।

चतुर्थ अंक ।

प्रथम गर्भांक ।

स्थान—दक्षपुरी—प्रसूती के गृह का द्वार ।

(सभापाल और सनका उपस्थित)

सभा०—सनका ! एक बेर हमारा नाम लेकर पुकार तो, देखैं !

सन०—रात भर सब का नाम लेले कर, पुकारते २ थक गई केवल आपका और महाराज का नाम शेष है ! भला देखती हूं (द्वार पर कराघात पूर्व्वक उच्चस्वर से) माता ! सभापाल महाशय आये हैं, एकबेर किवाड़ खोलो—ए माता ! मेरा मरा मुंह ! देखो एक बेर उठो ! माता ! वे केवल एक बात कह कर चले जांयगे ! एक बेर कपाट खोलो ! (पुनः २ कराघात) माता मैं सच कहती हूं सभापाल महाशय आये है ! केवल एक बात उनकी सुन लो ! (सभापाल से) महाशय आप भी तो एकबेर पुकारें !

सभा०—मैं अब क्या पुकारूं, मेरी बात क्या नहीं सुनती हैं ? अच्छा मैं भी पुकारता हूं (द्वार के निकट जाकर) माता ! एक बेर उठो ! आप के ऐसा करने से सर्व दिक नष्ट हो जायगा ! सम्पूर्ण उद्योग भ्रष्ट होजायगा ! त्रिलोक में बड़ी लज्जा होगी ! सब प्रस्तुत है केवल प्रभात होने का बिलंब है, पहिले तो आपही और महाराज को एकत्र होकर दाम्पत्य बिधान से, होता ऋत्विक प्रभृति याज्ञिक गण को बरन करना होगा, रात्रिकाल भी अब अधिक नहीं है, इस समय आप को इस भाव से बैठ रहने में घोर बिपत्ति है !

सन०—अरे माता ने तो सुनाही नहीं, फिर पुकारिये अबकी देखूं।

सभा०—हे माता! जो! होना था सो हो गया अब थोड़ी सी रात रह गई है। उसके प्रतिकार का उपाय करना सहज नहीं है!—यदि हो भी, तो इस भाव में बैठ रहने से कैसे सिद्ध होगा? द्वार खोलो! दासकी बात सुनो! ऐसी युक्ति करो जिससे सब की रक्षा होवै! युक्ति करने से क्या नहीं होता!—असाध्य भी सुसाध्य होजाता है! युक्तिही के बल से देवताओं ने आपग्रस्ता, सिंधुगर्भस्था, कमला को भी पाया!—युक्तिही के प्रभाव से बिनता देबी सपत्नी की दासीत्व से बिमुक्त हुई हैं! उसी युक्ति का आश्रय ग्रहण करने से हम लोग भी आज इस बिषम बिपत्ति से विमुक्त होंगे! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं! आपतो धीरा स्थिरा गंभीरा हैं!—आप इस राजपुरी की राजलक्ष्मी हैं! एक मात्र कर्त्री, और शुभबिधात्री हैं! क्या क्रोधागार में प्रवेश करना और मौनभाव धारण कर बैठ रहना आप को शोभा देता है!? माता! क्या आप को भी किसी देवसपत्नी बिद्वेषिणी अप्रबीणा स्त्री की भांति संसारबिपर्य्यय करना उचित है? देखो, महाराज चित्र की भांति उठते हैं! समस्त पुर-

निवासी भी हाहाकार करते हैं! आप की प्राण-प्यारी कन्या आती हैं, वे लोग किसके निकट खड़ी होंगीं?—उन्हें कौन प्यार से देखेगा?—कौन स्नेह करेगा? वह क्या जानेगी कि हम पितृगृह आई हैं? यह देखो, महाराज स्वयं आते हैं, हे माता! अब बिलम्ब मत करो, उठो!

(दक्ष राजा का प्रवेश।)

दक्ष०—हा धिक! हा धिक! हा भाग्य! हा पितः! हा बिधाता! हा ब्रह्मण्य तेज! हा तप ही सामर्थ्य! हा राजदर्प! हा गर्व्व! सब नष्ट हुआ! तुम त्रिभुवन बिजयी होकर आज स्त्री के हाथ से परास्त हुये! ब्रह्माण्डचक्र चलाकर स्वयम नारीचक्र में पड़ गये! देवताओं पर प्रभुत्व करके स्त्रैणलों के निकट दासत्व स्वीकार किया।—सभापाल! कैसा अनर्थ है? (उच्च स्वर से) क्या होता है? अब तो सब नष्ट हुआ! अब सहा नहीं जाता! (द्वार पर आघात) महिषी! यज्ञ के निमित्त जितना पट्टबस्त्र औरघृत एकत्र हुआ है वह सब क्या अब अपने देह में लपेट कर अग्नि में प्रवेश करोगी? (बलपूर्व्वक कराघात) हाय! मेरा हृदय कांपता है मानो अकालही मृत्यु उपस्थित हुई। (सनका के प्रति) अरे सनका! यह

क्या होता है ? रानी ने गले में फांसी तो नहीं लगाई ? सब कर सकती है ! सब कर सकती हैं ! सब कर सकती हैं—अरे स्त्रीजाति सब कुछ कर सकती हैं ! सभापाल ! अब और उपाय नहीं है, द्वार तोड़ो—(कराघात पदाघात से द्वार भंग और गृह में प्रवेश) जो कहा था वही तो देखने में आता है। (समीप दौड़कर) नहीं प्राण नहीं है—कदापि नहीं बँची—सभापाल देखो तो क्या है ? क्या सर्व्व नाश हुआ ? देखो—भूतल में—स्थिर—आंख की पलक बन्द है—(नासिका के छिद्र में अंगुली देकर) नहीं—बची नहीं—अरे हैं—अभी हैं—श्वास आता है—अभी बुलाओ—वैद्य बुलाओ—जल दो—जो करना हो सो करो ! रानी ! महिषी ! देवी ! प्रिये ! प्रियसी ! प्राणेश्वरी ! दयिते ! जिवितसर्व्वस्वे ! नेत्र खोलो एक बेर कंजनयन से देखो—बोलो—कुछ कहो—हाय मैं हतभाग्य हूं—हाय मैं नितांत निर्दय हूं—हाय प्यारी ! मैं तुमारी यह दशा नहीं देख सकता ! सनका ! रानी को उठाओ—सेवा करो !

सन०—माता ! सुध करो, देखती नहीं हो, महाराज कितने अधीर हुये हैं ! माता तुम तो नितांत पतिव्रता, सती हो—

प्रसू०—(सुप्तोत्थिता की भांति) कहां है सती, कहां है ? कहां हैं मेरी पुत्री कहां है ? मेरे आंख की पुतली कहां है ? मेरी कैलासबासिनी ईशानी कहां है ? मेरे शिव की शिवानी कहां है ? मेरी भुवन मोहिनी कहां है ? कहां है सनका, तूने जो सती कह कर पुकारा; कहां है मेरी बेटी,—कहां है ?—

दक्ष०—यह तो विषम उन्माद है; सभापाल ! यह क्या प्रमाद है ? रानी तो एक बेरही उन्मादिनी हो गई हैं ! तो अब क्या उपाय है ?

सभा०—महाराज ! स्थिर होइये, शोक दुःख अनाहार के कारण रोते २ थक कर अज्ञान की भांति निद्रा के बशीभूत थीं, सनका के बुलाने से अकस्मात जाग उठीं, घोरनिद्रा से स्वप्न की सी बातें बक रही हैं, अब स्वभाव ठीक होजावेगा, आप चिंता न करें !

दक्ष०—(प्रसूती के प्रति) रानी ! महिषी ! प्रिये ! क्षमा करो—धैर्य्य धरो ! धैर्य्य धरो ! धैर्य्य धरो !

प्रसू०—कहां है मेरी सती कहां है ? कहां है मेरी दाक्षा—

दक्ष०—हा धिक ! अब भी वही ! महिषी क्षमा करो, तुमारी अठाइस दाक्षयणी हैं, उनमें से सत्ताईस आई हैं, तौ भी धीरज नहीं धरोगी ? क्या वह सब तुमारी पुत्रीं नही हैं, केवल एक ही के लिये इतना—

प्रसू०—वही तो मेरी पूर्णशशि है—और जो सताईस हैं सो उसी चन्द्रमंडल के तारागण हैं, महाराज !—

दक्ष०—क्या उस चन्द्र को अमावस्या नहीं है ? आज वह चन्द्र उदय नहीं होगा—आज नक्षत्रही देख कर तृप्त होना पड़ेगा ।

प्रसू०—महाराज ! जब तक वह चन्द्र उदय न होगा, तब तक मैं अन्धी रहूंगी ! उस चन्द्र के बिना मेरे हृदयाकाश में अन्धकार रहैगा ! मेरी आशा अब छोड़ दो ! दया करो, मैं जैसी हूं वैसही रहने दो ! मुझे कोई मत देखो, मत पुकारो, कोई मेरे निकट भी न बैठे, मुझ से कोई बार्तालाप मत करो, मेरा जीवन भी मत समझो, जाओ ! तुम सब लोग चले जाओ तुम लोग मेरा गृह छोड़ दो—नहीं तो मुझे किसी दूसरे स्थान पर कर दो—और यदि मेरा कोई सुहृदय हो तो कृपा करके थोड़ा सा विष ला दे !

दक्ष०—सभापाल ! अब क्या करोगे ? पूर्ण निराशा हुई जाती है ! मान गया - सम्भ्रम गया—दर्प गया—तेज गया राज्य गया—सम्पत्ति गई—अब कोई नाम भी न लेगा अब कोई कुशाग्र से भी स्पर्श नहीं करेगा—अब कोई प्रजापति—राजर्षि नहीं कहैगा ! इस यज्ञ के परिपूर्ण न होने के कारण ब्रह्मण्य तेज

भी भ्रष्ट हो जायगा—कोई उपाय नहीं है—एक बेरही निरुपाय है अब क्या करें ? जो सहने योग्य नहीं था वह भी सहा—रोने गाने को कुछ भी नहीं समझता था, वह भी सुना, वह भी किया, मुझ से अब कुछ नहीं होसकता—मैंजाता हूं, तुम से कुछ हो सके तो देखो; यदि तुम से भी कुछ न हो सकै तो कुछ रात्रि रहते, मुझको सूचित करो; देखें तपोबल से नूतन प्रसूती प्रगट होती है कि नहीं ?

सन०—महाराज ! अपराध क्षमा कीजिये, एक बात पूछती हूं, कि आप उसके जन्मदाता होकर उसे लेकर कैसे यज्ञ करेंगे ?

दक्ष०—तू चुप रह ! उस समय तुझ से व्यवस्था ले लेंगे ।

[प्रस्थान ।

प्रसू०—महाराज ! तो दासी श्रीचरण से जन्म भर को बिदा चाहती है--इस अपराधिनी का सब अपराध दीन जानकर क्षमा कीजिये ।

दक्ष०—(पुनः प्रवेश) हाय ! हमारी शेष अवस्था में यही सर्व्वनाशकारिणी कन्यारूपी नागिनी जन्म लेने को थी !

सभा०—(कर जोड़ कर धीरे से) महाराज, क्षमा कीजिये, आप इस क्षण जाइये ! यह दास यहां रहता है !

दुष्य०—अब यही करना समुचित है; यदि यत्न न भी होय, तोभी अब अयोग्य बात नहीं होगी। यदि त्रि-लोक विपच्च हो जाय, तो क्या चिन्ता! पर तो भी अब कुछ नम्र होने को नहीं। यह मस्तक जब तक कंधे पर रहैगा तब तक स्तुतिवाक्य फिर मुख से नहीं निकालूंगा, यही प्रतिज्ञा है! [प्रस्थान।

सभा०—माता! आप क्या करती हैं? आप बुद्धिमती है, आप को शिक्षा देनेवाला कौन है? यह हम लोगों के अदृष्ट का दोष है, कि आप वात्सल्य धर्म्म से अत्यंत वशीभूत होकर अन्य अवश्य कर्तव्यधर्म्म को नहीं देखतीं-माता! गृही होने के कारण ही नाना प्रकार के स्वजनों से काम पड़ता है, सब की बुद्धि समान नहीं होती! देखो! सब देवता ही सम प्रकृति के नहीं है, तो फिर मनुष्य की क्या गिन्ती है! विधाता ने दो मनुष्य को भी एक भाव का नहीं बनाया इसी से पति, पत्नी, पिता, पुत्र, भ्राता, भग्नी इत्यादि स्वजनों में कितना मतान्तर होता है—इसी से अभद्र घरों में कितना कलह और बिबाद होता है-और भद्र घरों में स्त्री पुरुष धर्म्म और नीतिसिक्षा करते हैं, ज्ञान और धर्म्मशासन के प्रभाव से परस्पर द्वेष को छोड़ ऐसे अपूर्व्व भाव से मिलते हैं कि उन

में बिभिन्नता का लेश भी नहीं रहता यदि कोई अज्ञान और अधीर होजावे तो दूसरे को उचित है कि धैर्य्यशील हो कर अमंगल को मिटावे।

(नेपथ्य में कोलाहल)

सन०—माता! चन्द्रलोक से सब राजकन्या आ रही हैं।

सभा०—यह उसी का कोलाहल है! मनका, जाकर उन लोगों में से किसी २ को यहीं बुला ला।

[मनका का प्रस्थान।

सभा० - (क्षणमात्र चुप रह कर) माता! अब उठ बैठो, राजकन्या आती है, उन लोगों को देख कर जी बहलाओ! मैं अब जाता हूं! [प्रस्थान।

(सनका के संग अश्विनी आश्लेषा और मघा का प्रवेश)

मघा०—हाय दुर्भाग्य! यह क्य? - माता इस भांति भूमि पर क्यों पड़ी हैं?

अश्वि० - (निकट जाकर) माता! क्यों ऐसे पड़ी हो?

आश्ले० - माता! क्या पिता जी पर क्रोध किया है?

मघा - भला माता! कोप तो पिताजी पर है, हम लोगों ने क्या अपराध किया है कि देखने पर भी नहीं उठती हो, और न कुछ बात करती हो?

प्रसू० - (सरोदन) पुत्रि! तुम लोगों के आने से प्राण शीतल हुआ इसी के साथ यदि अपनी जन्मदुःखिनी

सती का मुखचन्द्र भी देखने पाती, तो कितना सुख होता। मैं कैसे उठूं बेटी, मुझ को उठने की शक्ति नहीं है – इच्छा भी नहीं है।

मघा० – क्यों ? सती के कारण इतना ! तुमारी वह सती आती है, दुखित मत हो !

प्रसू० – (सरोदन) बेटी ! क्यों झूठी बातों से अपनी माता को भुलवाती है ?

मघा० – माता ! यदि मैं झूठ बोलती होऊं तो मेरी दोनों आंखें फूट जावें – जीभ गिर पड़े।

प्रसू० – मैं बलि जांउ! सत्य कह, क्या बात है ? (अश्विनी के प्रति) हां बेटी, अश्विनी ? यह क्या कहती है ? क्या मेरी सती आवेगी ? और मुझको 'माता" कह कर पुकारेगी ?

अश्वि० – हम लोग आने के समय कैलास पर सती के पास गई थीं, सच कहती हूं वह आती है, माता !

आश्ले० – अब तक नहीं आई यही आश्चर्य है !

प्रसू० – पुत्री, तुम सब क्या कहती हो? जो तुम कैलास में गई थीं, तो अपने साथही उसे क्यों न लेती आई ? तो फिर वह किसके साथ आती है ? तुम सब तीनों क्या आगे ही चली आईं ?

अश्वि० – नहीं माता! हम लोग सताईसो बनी जो आई

हैं, सती को लाने गई थीं, सती हम लोगों को अ-
पने घर छोड़ कर पहिलेही चली आई।

प्रसू० – पुत्रि। यह क्यों वह तुम सभों के साथ नहीं आई और तुम सभों को अपने घर छोड कर आप अकेली चली आई यह कैसी बात है?

मघा – "कैसी बात है" नहीं जानतीं? हठ और अहं-कार है। हम लोगों के रथ पर आती तो छोटी न होजाती,? इसी से अपने रथ पर आती है। आश्लेषा बहिन भी अनजान की भांति बात करती है, सती आगे नहीं आई, इस को आश्चर्य मानती है। हम लोग चन्द्ररथ पर आकाश मार्ग से पवन की भांति आई है। और वह बैल के रथ पर – इचर – इचर इचर—बिना बोले भी नहीं बनता। इतने दिन पर माता के पास आई, इतने दूर पथ से—तृष्णा के मारे छाती फटती है, कोई इतना भी नहीं पूछ-ता कि कैसे रही? किसी ने यह भी नहीं कहा कि बैठो!—किसी ने यह भी न कहा कि कुछ खाओ – किसी ने प्रेमभाव से देखा भी नहीं किसी ने समुचित प्रकार से वार्तालाप भी नहीं किया, के-वल सती! सती! सती – बरन और बहिनों ने अच्छा किया, कि वह सब सभा देखने चली गई। देख कर शीतल होंगी; यह अग्नि तो न तापना पड़ेगा।

प्रसू० – (सरोदन) बेटी ! तू क्यों ऐसा कहती है ? क्या तुम सभों को अपनी माता की दशा देखकर कुछ भी दया माया नहीं आती ? हा ! मैं ऐसी अभागिनी हूं कि अब तुम सब मेरी गर्भज सन्तान हो कर भी मेरी व्यथा नहीं बूझतीं ? बेटी मघा ! क्या तुमारी माता अब वही है ? बेटी ? क्या तुमारि माता को उठने की शक्ति है, कि तुम सभों का मान आदर सत्कार करके भोजन प्रभृति का यत्न करे। जब से तुम लोग आई हो और मुझे माता कहकर पुकारा है तभी से उठ कर बैठी हूं तुम लोगों के साथ यदि सती भी आई होती, और ऐसे ही "माता" कहकर पुकारे होती, तो मेरे हृदय की अग्नि शान्त होजाती। मैं "सती, सती" कहती हूं तो क्या इस्से तुम लोगों में भिन्न भाव है ? सती तुम सभों से छोटी है; सती चिरदुःखिनी, भिखारिनी है; तुम सब तो अब बड़ी हुईं, और सब एक ही स्थान पर रहती हो; बिचार तो करो कि अभी उस की अवस्था ही क्या है ? प्यार से उसका मुख देखनेवाला कौन है ? और वह कब की गई है ? तब से क्या फिर कभी यहां आई है ?

मघा – हम सब भी तो कितने दिन की गई हैं।

प्रसू०—यह दृढ़ आशा थी कि यज्ञ के उत्सव में तुम सब आओगी और वह भी आवेगी; सबों को देख कर मेरा प्राण शीतल होगा,। परन्तु इस अभागिनी के अदृष्ट दोष और महाराज के कोप से वह आशा एक बेरही नष्ट होगई; पुत्रि क्या इतने पर भी मेरा प्राण स्थिर रह सकता है? बेटी! इस क्षण तुम्हीं लोगों के मुख देखने से मुझे संतोष है बेटी! यदि तुम पुत्री हो कर मा की यह जलन नहीं बुझाओगी, तो फिर दूसरा कौन बूझेगा? किस के साम्हने रोऊंगी? और अब किस के लिये इस अभागी प्राण को रक्खूंगी? हाय इस अभागिनी पर स्वामी निर्दय हुए हैं अतएव निज गर्भज संतान भी जिनके लिये सब कुछ किया विमुख हैं। तो फिर इस तुच्छ प्राण के रखने की क्या आवश्यकता है? हा दग्धप्राण! अब शीघ्र प्रयाण करो (वक्षस्थल में कराघात) अभी निकलो। हा धिक् जीवन प्राण—अब लों तू रहा है?

अखि०—(प्रसूती का हाथ पकड़ कर) माता! तुम्हें मेरे सिर की सपथ धैर्य धरो!—क्या मघा को तुम नहीं जानतीं? इस का मुंह नहीं है, छुरी है! इस के वाक्यदोष से सब नष्ट होता है—ऐसी ही ऐसी बातों से सती का भी जी जलाकर आई है—इसी

के वाक्यज्वाला से तो वह हम लोगों के साथ नहीं आई! अब यहां आकर माता का भी शरीर जलाने लगी! यह क्या किसी का दुख बूझती है? यह तो अपनेही अभिमान में भूली रहती है। न जानें हम लोगों ने क्या पाप किया है कि जहां जाती हैं, मघा हमारा साथ नहीं छोड़ती—

मघा—क्या मैंने कभी तुम्हारा अंश छीन लिया है? मैं तुम लोगों को इतनी बिष—! तो यहां मेरा क्या काम है? [प्रस्थान ।

प्रसू॰—पुत्रि, तुझे मेरी सपथ कुछ भोजन कर के जा!

अश्वि॰—जाने भी दे कुछ चिन्ता नहीं।

(नेपथ्य में सानन्द और संखध्वनि सहित कोलाहल)

ऐ माता!—सती—

ऐ माता!—तुमारी सती—

ऐ माता प्रसूती!—तुमारी सती—

ऐ माता देखो!—आई तुमारी सती—

ऐ माता!—तुमारी खोई हुई सम्पति, सती आई—

प्रसू॰—कहां है मेरी पुत्री, कहां है?

(शीघ्र से उठना और गिर पड़ना)

अश्वि॰ और सनका—(प्रसूती को पकड़ कर) माता अभी मत उठो, तुम्हें शक्ति नहीं है, मत उठो!

प्रसू०—कुछ भय नहीं पुत्रि! अब मैं नहीं गिरूंगी मुझे जाने दे, बेटी को गोद में उठा लाऊंगी!

अश्वि०—नहीं माता, तुम नहीं पहुंच सकोगी मैं उसे ले आती हूं!

आश्ले०—मैं भी चलतीहूं—(अश्वि० आ आश्लेषा का प्रस्थान)

प्रसू०—भला सनका! यह क्या सत्य है, मेरी सती आई है? ऐसा दिन कब होगा विधाता? (रोदन)

सन०—भगवान ने तो वह दिन दिखाया—मन की लालसा भी पूर्ण की, अब क्यों रोती हो माता? (अंचल से आंसू पोंछती है) चुप रहो, चुप रहो!

प्रसू०—पुत्रि! मैं अह्लाद से रोती हूं, तुम लोग यही मनाओ कि मेरा इस प्रकार का रोना सर्वदा बना रहे।

(सती और अश्विनी का प्रवेश)

सती—(माता के वक्षस्थल पर गिर कर रोदनपूर्व्वक) माता, तेरी कङ्गालिनी आई!—एक बार इसे गोद में बैठा माता!

अश्वि०—(सती का हाथ पकड़ कर) सती! चली आ बहिन, चली आ, माता बहुत दुर्बल हो गई हैं, गोद में मत बैठ!

प्रसू०—(सती को गोद में खींच कर रोती हुई) नहीं बेटी! मैं दुर्बल नहीं हूं, तू यहीं बैठ, मैं बहुत भली हूं

शीतल कर! (बारम्बार मुखचुंबन और दोनों का रोदन) सती! अपनी दुःखिनी माता को क्यों भुला दिया था बेटी? तू इस अंधी की नेत्र, दरिद्रिनी की निधि है; तेरे बिन राज्य, धन सब तुच्छ है आ तुझे भली भांति देखूं बेटी! बहुत दिनों पर तेरा चन्द्रमुख भली भांति देख कर प्राण शीतल करूं (अपना आंसू पोंछ कर देखती हैं) ऐं बेटी! यह क्या हुआ? वैसा सुन्दर बरण ऐसा क्यों हो गया? सती! तेरा मुख देख कर मेरी छाती फटती है पुत्रि, (सनका और अखिनी के प्रति) भला तुम सब तो देखो! मेरी सती ऐसी मलिन क्यों हो गई है?

सन०—बलैया लूं और कुछ नहीं, गृहस्थाश्रम में रह कर रात्रि दिवस स्वयम् कार्य करना और चिन्ताग्रस्त रहना पड़ता है, बस यही कारण है।

प्रसू०—भला बेटी! यह क्या सत्य है? हाय! यह मेरे अदृष्टि का फल है, मैं फिर क्यों पूछती हूं? मैंने क्या ऐसे घर इस का विवाह किया है, कि जिस में पांच प्राणी हों, और सब इसका आदर करें जिस अवस्था में मेरी और सब पुत्री हँसती खेलती फिरती थीं उसी अवस्था में मेरी बेटी गृहस्थिनी हो गई? हाय मेरी पुत्री की जो कान्ति सुवर्ण सी थी आज वही स्याही